प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति का क्रमबद्ध अध्ययन

डॉ0 शशिबाला*

किसी भी देश में स्त्रियों की स्थिति उस देश की सभ्यता व संस्कृति का मापदण्ड कही जा सकती है। डॉ. अल्तेकर के अनुसार, ''स्त्री के प्रति सम्मान की मात्रा को समाज की सभ्यता का एक मापदण्ड माना जाता है।'' प्राचीन भारत में स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी जो कि शनैः–शनैः विकृत होती गई।[1]

प्राचीन भारत में प्रारम्भ से ही स्त्रियों का जीवन स्वतन्त्र नहीं रहा और वे पिता, पति तथा पुत्र के नियन्त्रण में रहीं। प्राचीन साहित्य एवं कला में स्त्रियाँ लौकिक तथा धार्मिक कार्यों में पतियों के साथ प्रदर्शित की गई हैं जिससे ज्ञात होता है कि वे सामाजिक और धार्मिक कार्यों में सक्रिय रूप से भाग लेती थीं। प्रभावती गुप्ता, नागनिका आदि अपने अवयस्क पुत्रों की अभिभावक के रूप में शासन का भार सम्भालती थीं। अनेक महिलाएँ प्रतिष्ठित शिक्षिकाओं (उपाध्यायों) के रूप में कार्य करती थीं। इस पक्ष के विपरीत कन्याओं का उपनयन संस्कार नहीं किया जाता था। स्त्री के सतीत्व एवं पतिभक्ति पर अत्यधिक जोर देकर उसकी स्वतन्त्रता को काफी सीमा तक सीमित कर दिया गया था। लेकिन साथ–ही–साथ इस विश्वास के भी अनेक प्रमाण मिलते हैं कि प्राचीन काल में स्त्रित्री को आदर्शात्मक तथा मर्यादायुक्त सम्मान भी प्राप्त था। स्त्री को सर्वशक्ति सम्पन्न स्वीकार करते हुए, उसे विद्या, यश और सम्पत्ति का प्रतीक माना गया।[2]

विभिन्न काल में स्त्रियों की स्थिति कुछ इस प्रकार थी–

ऋग्वैदिक काल : ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति सम्माननीय थी। वे अपने पति के साथ यज्ञ कार्यों में सम्मिलित होती एवं दान दिया करती थी। पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था। स्त्रियां भी शिक्षा ग्रहण करती थीं, ऋग्वेद में लोपा मुद्रा, घोषा, सिकता, अपाला एवं विश्वारा जैसी विदुषी स्त्रियों का जिक्र मिलता है। इन विदुषी कन्याओं को 'ऋषी' उपाधि से विभूषित किया गया। इस समय लड़कियों का भी उपनयन संस्कार किया जाता था। शिक्षा गुरूकुल पद्धति पर निर्भर थी, जहां पर सामान्यतः मौखिक शिक्षा का प्रचलन था। विवाह न करने की स्थिति में यदि पुत्री पिता के घर में ही रहती है तो वह पिता की सम्पति में हिस्सेदार होती थी।

*यू0जी0सी0 नेट, पीएच0डी0, इतिहास विभाग बी0आर0ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सामान्यतया बाल विवाह एवं बहु विवाह का प्रचलन नहीं था। विधवा विवाह, अन्तर्जातीय एवं पुनर्विवाह की संभावना का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। साधारणतया समाज में एक पत्नी प्रथा का ही प्रचलन था, पर सम्पन्न लोग एक से अधिक विवाह करते थे। दहेज प्रथा का प्रचलन था। सती प्रथा एवं पर्दा प्रथा का विवरण नहीं मिलता। समाज में नियोग प्रथा, एवं बहुपतीत्व प्रथा का भी प्रचलन था। उदाहरण हेतु मरूतों ने रोदसी को मिलकर भोगा, सूर्या (सूर्य की पुत्री) अपने दो भाई अश्विन के साथ रहती थी। जीवनभर अविवाहित रहने वाली लड़कियों को 'अमाजू' कहा जाता था।[3]

उत्तर वैदिक कालः उत्तरवैदिक काल में अन्तर्वर्णीय विवाह, बहुविवाह, विधवा विवाह, नियोग प्रथा, दहेज प्रथा का प्रचलन था। बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा का उल्लेख उत्तर वैदिक काल में नहीं मिलता। स्त्रियों की दशा उत्तर वैदिक काल में ऋग्वैदिककाल की तुलना में अच्छी नहीं थी। पुत्री–जन्म पर खेद एवं पुत्र–जन्म पर हर्ष व्यक्त किया जाता था। इस काल में स्त्रियों के लिए उपनयन संस्कार प्रतिबन्धित हो गया था। ऐतरेय ब्राह्मण में पुत्री को 'कृपण' कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि पत्नी के बिना पति यज्ञ कार्यों को सम्पन्न नहीं कर सकता। शतपथ ब्राह्मण में अनेक विदुषी कन्याओं का उल्लेख मिलता है। ये हैं–गार्गी, गन्धर्व गृहीता, मैत्रैयी आदि। उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों का पैतृक सम्पत्ति से अधिकार छिन गया। इस काल में स्त्रियों का सभा में प्रवेश वर्जित था।[4]

रामायण काल : इस युग में भारतीय स्त्री का स्थान यद्यपि पुरूष के बराबर माना जाता था पर व्यावहारिक दृष्टि से समाज पुरूष प्रधान था। स्त्री का स्थान क्रमशः गिर रहा था। राम ने खुद सीता की अग्निपरीक्षा लेने के बावजूद एक धोबी द्वारा ताना मारे जाने पर सीता को वन में छोड़वा दिया था। लंका–विजय के बाद राम के पास जब सीता आती है तो राम कहते हैं, ''कौन ऐसा कुलीन पुरूष होगा जो तेजस्वी होकर भी दूसरे के घर में रही हुई स्त्री को प्रेम के लालच से ग्रहण करेगा। तुम रावण की गोद में बैठकर भ्रष्ट हो चुकी हो, उसकी कुदृष्टि तुम पर पड़ चुकी है। अपने उच्चकुल का बखान करते हुए मैं तुम्हें भला कैसे स्वीकार कर सकता हूँ। अतः तुम जहाँ जाना चाहती हो जा सकती हो, मेरा तुमसे कोई अनुराग नहीं है।'' इस प्रकार गर्भवस्था में राम द्वारा सीता का निष्कासन और वह भी अग्नि–परीक्षा के बाद, स्त्री पर पुरूष के अत्याचार का द्योतक है। स्त्री उत्तर वैदिक में स्वतन्त्र थी। यहाँ तक कि वह कामेच्छा की तृप्ति के लिए किसी मनचाहे पुरूष से लैगिंक संबंध स्थापित कर सकती थी। स्मृतियों में स्त्री को सदा पवित्र माना गया है। परपुरूष के सहवास से उसे तभी तक अपवित्र माना जाता था जब तक कि वह रजस्वला न हो जाय और इसके बाद वह फिर पवित्र है। रामायण काल में

उसकी स्वच्छन्दता बाधित होकर कठोर पतिव्रत धर्म के पालन तक सीमित हो गयी और पुरूष के अत्याचार बढ़ने लगे। रामायण में सुमाली ने कहा है कि कन्या का पिता होना दुःख का कारण है क्योंकि प्रत्येक अवस्था में पुत्री दुःख का कारण बनती है। इसी प्रकार रामायण कालीन भारतीय स्त्री वैदिक स्त्री की अपेक्षा नीचे गिर गयी थी।[5]

महाभारत काल : इस काल में स्त्री की दशा में और अधिक ह्रास दिखलायी पड़ता है। उसकी स्वतन्त्रता की बात तो दूर रही उसे बेचने की वस्तु तक माना जाने लगा। इस युग की स्त्री पुरूष की व्यक्तिगत सम्पत्ति थी जिसे वह किसी को दे सकता था, अथवा बेच सकता था। वह जैसे चाहे स्त्री का उपयोग कर सकता था। युधिष्ठिर अपनी पत्नी द्रौपदी को जुए में हार गये थे। कौरवों के दरबार में रजस्वला होते हुए भी द्रौपदी का चीर–हरण स्त्री की कितनी निम्न अवस्था का परिचायक है, कहा नहीं जा सकता और वह भी उस समय जब कौरव व पाण्डव कुल के पितामह भीष्म, द्रोण, कर्ण तथा पाँचों भाई पाण्डव व अनगिनत सगे संबंधी, आचार्य, पुरोहित सभी बैठें हुए थे लेकिन किसी की जबान तक नहीं हिली। यहीं नहीं स्त्री को जबरन उठा ले जाना, उसके साथ विवाह कर लेना, अत्याचार करना, दान दे देना, बेंच देना आदि परम्पराओं के दर्शन भी इस काल में होते हैं। जिस द्रौपदी के रूप गुण, शील तथा आचार की प्रशंसा करते हुए युधिष्ठिर कभी नहीं थकते उसी को जूए पर लगा देना उनके भोले चरित्र व स्त्री को मात्र–व्यक्तिगत सम्पत्ति समझने का परिचायक नहीं है तो क्या है? कदाचित महाभारत काल में स्त्री की मर्यादा काफी नीचे गिर गयी थी। इस काल में बहुविवाह, पैशाच विवाह, असुर विवाह की परम्परा के दर्शन होते है। वर्णान्तर विवाह का प्रचलन भी दिखलायी पड़ता है।

एक ओर महाभारत काल में जहाँ स्त्री की गिरी हुई दशा व परतंत्रता के दर्शन होते हैं वहीं कहीं–कहीं पर स्वतंत्रता के भी दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिए कुन्ती ने अपने पाँचों पुत्रों को दूसरों से जन्म दिया था। कुँआरेपन में ही कर्ण का जन्म सूर्य के तेज से हो गया था। भीष्म के पिता शान्तनु ने मछेरे की कन्या से विवाह कर लिया था। व्यास ने एक शूद्र कन्या से सम्पर्क किया जिससे विदुर पैदा हुए थे। व्यास ने ही अम्बा और अम्बालिका को पुत्र दान दिया था। इस प्रकार सन्तान प्राप्त करने की स्वतंत्रता एक साथ कई पुरूषों की पत्नी होने की स्वतंत्रता के भी दर्शन होते हैं। परन्तु सब मिलाकर हम यही कह सकते हैं कि महाभारत काल में स्त्री की दशा मात्र भोग्या, व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा पुरूष की दासी के रूप में रह गयी थी। उसके अधिकार नाममात्र को रह गये।[6]

बौद्ध व जैन काल : इस युग को ई.पू.600 वर्ष पहले से लेकर ई. सन् की 5वीं शताब्दी तक माना जा सकता है। इस काल में भारतीय स्त्री की दशा में

कुछ सुधार हुआ वह अधिक दिनों तक स्थायी नहीं रह सका। महात्मा गौतम बुद्ध की उदार नीतियों के फलस्वरूप स्त्री के साथ होने वाले अत्याचार कम हुए और समाज में उनका सम्मान भी बढ़ा तथा उसे संन्यास ग्रहण करके बौद्ध भिक्षुणी बनने तक का अधिकार दिया गया। लेकिन बौद्ध धर्म का मूल उद्देश्य महायान शाखा में बौद्धों ने तिरोहित कर दिया। बौद्ध संघारामों में स्त्री के प्रवेश से जो प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई उससे बौद्ध मन्दिरों की पवित्रता नष्ट हो गयी और ये मन्दिर व्यभिचार के केन्द्र बन गये। स्त्री को विविध रूपों में मात्र कामोपभोग की वस्तु माना जाने लगा तथा इसी रूप में उसकी वन्दना की जाने लगी। महायान की वज्रयानी शाखा में तो खुलकर मांस और मैथुन का प्रयोग होने लगा था जिससे बौद्ध धर्म पतन के गर्त में गिरकर नष्ट हो गया। इस प्रकार बौद्धों का त्याग व तपस्यामय आदर्श दृष्टिकोण पतित होकर इन्द्रिय भोग में बदलकर रह गया और स्त्री वासना की प्रतिमूर्ति बनकर रह गयी।

इसी प्रकार जैन धर्म की अतिशय संन्यास मार्गी प्रवृत्ति ने भी स्त्री की निदा की और उसे अर्हत् बनने के मार्ग की प्रधान बाधा माना। इन युगों में स्त्री विषयक दृष्टिकोण में कोई खास सुधार नहीं दिखलाई पड़ता पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि स्त्री स्वतंत्रतापूर्वक जीवन व्यतीत कर सकती थी।[7]

मौर्य काल : स्मृतिकाल की तुलना में मौर्यकाल में स्त्रियों की स्थिति बेहतर थी। पुनर्विवाह एवं नियोग प्रथा का प्रचलन था। जो स्त्रियाँ घर से बाहर नहीं निकल पाती थीं उन्हें अर्थशास्त्र में 'अनिष्कासिनी' कहा गया। इस समय सती प्रथा का कोई प्रमाण नहीं मिलता। कुछ युनानी लेखकों की यह मान्यता है कि उत्तर पश्चिम में मृत सैनिकों के साथ उनकी स्त्रियों के सती होने की परम्परा थी। मौर्यकाल में ऐसी स्त्रियां गणिका व वैश्या कहलाती थीं जो वैवाहिक सूत्र में न बंधकर स्वतंत्र जीवन यापन करती थीं। ऐसी स्त्रियां 'रूपाजीवा' कहलाती थीं, जो स्वतंत्र वैश्यावृत्ति को अपनाती थीं।[8]

मौर्योत्तर काल : इस काल में स्त्रियों की दशा में व्यापक परिवर्त्तन देखा गया। चूँकि इस काल में भारतीय समाज में नवीन तत्त्वों के मिश्रण से काफी परिवर्तन आया। मनु ने नारियों के प्रति कठोर रूख अपनाया। नारियों को समान अधिकार से वंचित कर दिया गया। पहली बार देखा गया कि पुरूष भी अब महिला को तलाक दे सकता था। कन्याओं का विवाह पूर्व काल की वनिस्पत कम आयु में होने लगा, अधिक आयु तक कन्याओं का अविवाहित रहना पाप समझा जाने लगा। अन्तरजातिय विवाह पूर्व काल की तरह इस काल में भी चलता रहा। विधवाओं की दशा इस काल में काफी दयनीय रही। परदा प्रथा का प्रचलन इस काल में भी चलता रहा। इस काल की राजघराने की कुछ स्त्रियां राजनीति में

सक्रिय रूप से भाग लेती थी। नागनिका ने सफलता पूर्वक शासन किया। धार्मिक कार्यों में स्त्रियाँ भाग लेती थी। नागनिका ने अनेकों वैदिक यज्ञों को सम्पन्न किया था पूर्व काल की तरह समाज में विवाह एक पवित्र संस्कार माना जाता रहा। कन्याओं का विवाह उचित वर खोज कर किया जाता था। शिक्षा भी प्राप्त करती थी।[9]

गुप्त काल : गुप्तकालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति के विषय में इतिहासकार रोमिला थापर ने कहा कि साहित्य और कला मे ंतो स्त्री का आदर्श रूप झलकता है पर व्यावहारिक दृष्टि से देखने पर समाज में उनका स्थान गौड़ था। पितृप्रधान समाज में पत्नी को व्यक्तिगत सम्पत्ति समझा जाता था पति के मरने पर पत्नी को सती होने के लिए प्रेरित किया जाता था, उत्तर भारत की कुछ सैनिक जातियों के परिवारों में बड़े पैमाने पर सती होने की प्रथा का प्रचलन था। प्रथम सती होने का प्रमाण 510 ई0 के भानुगुप्त के एरण अभिलेख से मिलता है जिसमें किसी गोपराज (सेनापति) की मृत्यु पर उसकी पत्नी के सती होने का उल्लेख है। गुप्तकाल में कन्याओं का विवाह अल्पायु (13 या 14 वर्ष में) कर दिया जाता था। गुप्तकाल में पर्दाप्रथा का प्रचलन केवल उच्च वर्ग की स्त्रियों में था। फाह्यिान एवं ह्वेनसांग के अनुसार इस समय पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था। नारद एवं परशर स्मृति में विधवा विवाह के प्रति समर्थन जताया गया है। गुप्तकालीन समाज में वेश्याओं के अस्तित्व के भी प्रमाण मिलते हैं, पर इनकी वृत्ति की निंदा की गयी। गुप्तकाल में वेश्यावृत्ति करने वाली स्त्रियों को 'गणिका' कहा गया। 'कुट्टनी' उन वेश्याओं को कहा जाता था जो वृद्ध हो जाती थीं।[10]

गुप्तोत्तर काल : इस काल में स्त्रियों की स्थिति उतनी अच्छी नहीं थी जितनी की पूर्व काल में। उच्च वर्ण में स्त्रियों को शिक्षा दी जाती थी। राजपूतकालीन समाज में उच्चकोटि के चरित्र वाली स्त्रियों का उल्लेख मिलता है। इस समय इंद्र लेखा, मोरिक, पद्मश्री, मदालसा एवं सुभद्रा जैसी संस्कष्त की विदुषी कवियित्रियों का उल्लेख मिलता है। इस युग के समाज में व्याप्त सती एवं जौहर प्रथा, पुत्री बाल हत्या, बहुपति विवाह, देवदासी एवं वेश्यावृत्ति जैसी कुप्रथा ने निःसंदेह स्त्रियों की स्थिति को कमजोर किया। इस काल में अन्तर्जातीय विवाह पर कठोर प्रतिबन्ध था। स्मृतियों में स्त्री विवाह की उम्र 8 से 10 वर्ष बताई गई, इससे बाल विवाह को प्रोत्साहन मिला। विधवा विवाह पर प्रतिबन्ध था। अग्नि पुराण, नारद तथा पाराशर स्मृति में पुनर्विवाह या विधवा विवाह की अनुमति उन स्थितियों में दी गयी जबकि पति लापता हो या मृत्यु हो गई हो या फिर संन्यासी हो गया हो। मेधातिथि ने पुनर्विवाह या विधवा विवाह की आज्ञा नहीं दी।

गुप्तोत्तर काल में सती प्रथा के प्रचलन में 9वीं शताब्दी के बाद तेजी आई, क्योंकि इस समय ब्राह्मणों द्वारा दी गई व्यवस्था के तहत समाज में वैराग्य एवं

कठोर संयम संबंधी विचारधारा जोर पकड़ रही थी एवं इसके साथ ही पुनर्विवाह पर रोक एवं विधवाओं को प्राप्त होने वाली सम्पत्ति के विवाद को शीघ्र न सुलझाना आदि ऐसे कारण थे जिनकी वजह से विधवायें सती होकर इन कष्टों से मुक्ति पाना चाहती थीं।[11]

निष्कर्ष : उपरोक्त विवेचन से स्त्री की प्राचीन भारत में दशा का पता चल जाता है। वैदिक स्त्री का जो पतन परवर्ती साहित्य में दिखलाई पड़ता है उसकी कोई तुलना नहीं है। अतः कहा जा सकता है कि भारतीय स्त्री धीरे–धीरे निम्न स्तर को प्राप्त होती गयी।

संदर्भ सूची :

1. दीक्षित, दिनेश, प्राचीन भारत का इतिहास, बिमल प्रकाशन मंदिर, आगरा, 2008, पृसं0–92.
2. तथैव, पृसं0–92.
3. यादव, डॉ0 वीरेन्द्र प्रसाद, सामान्य अध्ययन, प्रभात पेपरबैक्स, पृ0सं0–20.
4. तथैव, पृ0सं0–22.
5. कुशवाहा, त्रिभुवन आनंद, प्राचीन भारत का इतिहास, शिक्षा साहित्य प्रकाशन, वाराणसी, 2007, पृ0सं0–61.
6. तथैव, पृ0सं0–62.
7. तथैव, पृ0सं0–92.
8. यादव, डॉ0 वीरेन्द्र प्रसाद, सामान्य अध्ययन, प्रभात पेपरबैक्स, पृ0सं0–41.
9. कुशवाहा, त्रिभुवन आनंद, प्राचीन भारत का इतिहास, शिक्षा साहित्य प्रकाशन, वाराणसी, 2007, पृ0सं0–74.
10. यादव, डॉ0 वीरेन्द्र प्रसाद, सामान्य अध्ययन, प्रभात पेपरबैक्स, पृ0सं0–57.
11. तथैव, पृ0सं0–62.